रिश्ते की डोर

-डॉ. स्वतंत्र जैन

रिश्ता कोई भी हो, किसी से भी हो, रिश्ता तो आखिर रिश्ता ही है
बहिन से, भाई से, पति ओ' पत्नी से, मात-पिता से, मित्र ओ' सखा से !
रिश्ते की सुन्दरता, उसकी पवित्रता, मधुरता ओ' मर्यादा,
उसके जीने की कला, उसकी आन ओ' शान ही निराली है।

पर ! हर रिश्ता निभाना, उसको जीना, आसान नहीं है इतना
'गर होता ऐसा, वसुंधरा पर सुख शांति का साम्राज्य ही होता।
हर रिश्ता बंधा होता है, इक मर्यादा में, सीमा में, अपनी हद में !
हर रिश्ते की अपनी जिम्मेवारी है तो, उलझने भी नहीं हैं कम !

पर हर रिश्ता टूटने की कगार पर पहुँच जाये, क्या यह ज़रूरी है?
टूट जाये, फिर से जुड़ न पाए, मैला हो जाये, धुल न पाए, क्या यह ज़रूरी है?
नहीं, कदापि नहीं ! क्योंकि 'गर ऐसा होना ही है, और हुआ भी है,
कि, रिश्ता टुटा, टूट कर जुड़ न पाया, मैल उसका धुल न पाया,

तो शायद इस लिए कि, रिश्ते को सही मायनो में जिया ओ' निभाया ना गया, संवारा न गया,
और शायद इस लिए भी कि, रिश्ते की डोर इतनी पतली थी, नाजुक थी, कोमल थी
कि, नजाकत को उसकी मापा ना गया, समझा न गया, परखा न गया !
और इस लिए भी कि उस रिश्ते की डोर की परवरिश के लिए,

जितनी कला, जितने प्रयास ओ' जितने त्याग की ज़रूरत थी, किये ना गए !
जितना आत्म-विश्लेषण करने ओ' उसकी खामियों को सहन करने की ज़रूरत थी,
जितना माप तोल कर चलने की ज़रूरत थी, चला न गया,
जितना अहंकार जलाने की ज़रूरत थी, जलाया न गया।

क्योंकि, रिश्तों की महिमा ओ' गरिमा को, उन की आयु ओ' मिठास को, 'गर बढ़ाना है
तो, क्षमाशील व सहनशील बनना ही होगा, धैर्य दिखलाना ही होगा,
इक दूजे को जानना, समझना, स्वीकारना, और प्रेरित करना भी होगा,
अपने रिश्तों की आन, बान ओ' शान बचानी ओ' बढ़ानी ही होगी।

××××××××